Poonam Shodh Rachna(ISSN 2456-5563)
(A Multidisciplinary, Peer Reviewed and Refereed Research Journal)
Vol. 3, Issue.V, May 2024, PSR-2405016

एकात्म मानववाद का दिव्य सन्देश

Dr. Diwakar Kumar Kashyap
UGC NET JRF in Philosophy
UGC NET JRF in Comparative Studies of Religion
UGC NET in Buddhist, Jain, Gandhian and Peace Studies

सार
एकात्म मानववाद पंडित दीनदयाल उपाध्याय के सुदीर्घ चिंतन, गहन विमर्श एवं पूर्णतः भारतीयता पर आधारित एक महान अवधारणा है। मानव जीवन संपूर्णता में एकात्म है। पाश्चात्य देशों में जब प्रजातंत्र सुदृढ़ हुआ तब वहां एक धारणा उत्पन्न हुई जिसमें कहा गया कि मनुष्य एक सामाजिक एवं राजनीतिक पशु है। इस तरह की विचार एवं अवधारणा हमारे भारतीय संस्कृति के अनुकूल नहीं है। पश्चिमी देशों में व्यक्ति बनाम समाज को लेकर काफी विवाद है। भारतीय संस्कृति का मूल लक्षण यह है कि यह पूरे जीवन को एकात्मक रूप में देखता है। जीवन में विविधताएं हैं, परंतु यह विविधता एकात्मकता के महान लक्ष्य की ओर उन्मुख है। पंडित दीनदयाल उपाध्याय कहते हैं कि जैसे व्यक्ति की अपनी आत्मा होती है वैसे समाज की भी अपनी शक्ति, बुद्धि, भावनाएं होती है। हैं। जैसे व्यक्ति में आत्मा निहित होती है, ठीक उसी तरह राष्ट्र की भी अपनी एक आत्मा होती है। पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने इसे 'चिति' नाम दिया है। हमारे देश का एक समृद्ध एवं गौरवशाली अतीत रहा है। आज भारत का प्रत्येक व्यक्ति अपने उस गौरवशाली अतीत की पुनर्स्थापना के लिए दृढ़ संकल्पित है। लेकिन इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए आवश्यक है कि हमें पाश्चात्य संस्कृति को मानक मानने की प्रवृत्ति को समाप्त कर पूर्णतः भारतीयता पर आधारित नीतियों एवं विचारधाराओं पर अपना ध्यान केंद्रित करना चाहिए। इस संदर्भ में भारत को पुनः विश्व गुरु के रूप में स्थापित करने हेतु पंडित दीनदयाल उपाध्याय की स्थापना एकात्मक मानववाद सर्वाधिक महत्वपूर्ण पथ प्रदर्शक अवधारणा है।
मुख्य शब्दावली:- एकात्म, भारतीयता, चिति, विराट, विश्व-गुरु, धर्म, राष्ट्र

एकात्म मानववाद पंडित दीनदयाल उपाध्याय के सुदीर्घ चिंतन, गहन विमर्श एवं पूर्णतः भारतीयता पर आधारित एक महान अवधारणा है। वर्ष 1965 में विजयवाड़ा वार्षिक अधिवेशन में भारतीय जनसंघ ने इसे अपने मूल दर्शन के रूप में स्वीकार किया तथा वर्ष 1985 में भारतीय जनता पार्टी ने इसे अपने मूल दर्शन के रूप में स्वीकार किया।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय कहते हैं कि जब हमारा देश ब्रिटिश शासन के अधीन था, तब देश के सभी आंदोलनों एवं नीतियों का उद्देश्य स्वतंत्रता प्राप्त करना था, लेकिन उस दौरान भी स्वतंत्रता के पश्चात 'भारत का क्या स्वरूप रहेगा', इस विषय पर गंभीर विमर्श हुआ था। बालगंगाधर लोकमान्य तिलक ने अपनी पुस्तक 'गीता रहस्य' में एवं महात्मा गांधी ने अपनी पुस्तक 'हिंद स्वराज' में इस विषय पर अपने विस्तृत विचार प्रस्तुत किए थे। लेकिन इस विषय पर और अधिक गंभीर अध्ययन की आवश्यकता थी।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय कहते हैं कि सत्तासीन कांग्रेस के पास कोई विचार, सिद्धांत, आदर्श एवं संकल्प नहीं है। कांग्रेस की विचारधारा साम्यवाद, समाजवाद एवं पूंजीवाद सभी का घाल-मेल है। कांग्रेस की विचारधारा पाश्चात्य देशों से आयातित एवं प्रभावित है। भारत के सामने उत्पन्न समस्याओं का प्रमुख कारण अपने राष्ट्रीय पहचान की अवहेलना करना है। खुशहाली एवं प्रगति के लिए राष्ट्र की स्वतंत्रता के साथ-साथ राष्ट्रीय पहचान अत्यंत जरूरी है। लंबे समय तक ब्रिटेन के शासन एवं नीतियों के अधीन रहने के कारण पाश्चात्य देशों के सिद्धांत एवं स्थापना

हमारे लिए मानक और आदर्श बन गए एवं भारतीयता कहीं खो गई। स्वतंत्रता के पश्चात्, ब्रिटिश तो चले गये, लेकिन पश्चिमी सभ्यता प्रगति का पर्यायवाची बन गया।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय का मत है कि कांग्रेस पश्चिमी आदर्शों को अपनाकर भावी भारत की रचना करना चाहती है।1 साम्यवाद, समाजवाद, मार्क्सवाद, पूंजीवाद आदि सभी विचारधारा पाश्चात्य देशों की उपज हैं एवं इनमें से कोई भी विचारधारा भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के अनुरूप नहीं है। पाश्चात्य देशों कि ये सभी विचारधाराएं सार्वभौम और सर्वव्यापक नहीं है। पंडित दीनदयाल उपाध्याय कहते हैं कि यदि हमें अपने देशवासियों के चंहुमुखी विकास के लिए अग्रसर होना है, तो भारतीयता के अनुकूल सिद्धांत, स्थापना, नीति, विचारधारा और निर्णय को अपनाना होगा। प्रत्येक देश की अपनी एक विशिष्ट ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक स्थिति होती है एवं देश के संबंध में नीति बताते समय इस पृष्ठभूमि पर विचार करना नितांत आवश्यक है। आज मानवता संदेह के चौराहे पर खड़ी है एवं भविष्य की प्रगति के लिए उचित मार्ग का चयन करने में असमर्थ है। इन परिस्थितियों में एकमात्र हमारी भारतीय संस्कृति ही विश्व को दिशा-निर्देश प्रदान कर सकती है।

अपनी प्राचीन परंपरा की अवहेलना करने के कारण आज भारतीय आत्मा का हनन हो रहा है। चारों ओर चलने वाले कार्य में राजनीतिक तत्व हो सकता है, किंतु उसमें सच्ची भारतीयता नहीं है। आज अनुकरण करके राजनीति को जीवन का केंद्र बनाकर केवल ऊपरी साज-श्रृंगार किया जा रहा है। इस प्रकार की प्रवृति से और भी अध:पतन होगा और दुर्बलता बढ़ेगी। आज हम पूर्णतया आत्मविस्मृत हैं। अपनी भावात्मक जीवन के स्थान पर आज लोगों के सम्मुख अभावात्मक जीवन की कल्पना है। अराष्ट्रीय प्रवृत्तियों को नष्ट कर, राष्ट्रीय प्रवृत्तियां उत्पन्न कर इस विशाल एवं पुरातन राष्ट्र के जीवन को चिरंतन सामर्थ्य से युक्त कर उसको गौरवशाली बनाना ही हमारा ध्येय है। हम अपने राष्ट्र की आत्मा का साक्षात्कार करना चाहते हैं। अपने राष्ट्रीयत्व को जीवित रखना चाहते हैं, उसे बलशाली एवं वैभवशाली बनाना चाहते हैं।

भारतीय संस्कृति का मूल लक्षण यह है कि यह पूरे जीवन को एकात्मक रूप में देखता है। जीवन में विविधताएं हैं, परंतु यह विविधता एकात्मकता के महान लक्ष्य की ओर उन्मुख है। पाश्चात्य दार्शनिकों के द्वैत के सिद्धांत एवं हेगेल के पक्ष, विपक्ष एवं संपक्ष के सिद्धांत को कार्ल मार्क्स ने इतिहास एवं अर्थशास्त्र में अपने विश्लेषण के आधार के रूप में प्रस्तुत किया। लेकिन हमारी संस्कृति द्वैत के मूल में एकत्व को स्वीकार करती है। जीवन में विविधता आंतरिक एकता का ही शोधक है। संघर्ष पर आधारित प्राकृतिक चयन का सिद्धांत हमारी संस्कृति अथवा सभ्य जीवन का आधार नहीं हो सकता है। संपूर्ण विश्व में संघर्ष की अपेक्षा परस्पर सहयोग की भावना अधिक महत्वपूर्ण है। मानव, पशु, पक्षी एवं वनस्पति सभी एक दूसरे पर परस्पर आश्रित हैं।

मूल रूप से मानवीय व्यवस्था संघर्ष पर नहीं बल्कि परस्पर सहयोग एवं नैतिक मूल्यों पर आधारित होती है। एक बच्चा अपनी मूल प्रकृति के अनुसार झूठ नहीं बोल सकता है। लेकिन अभिभावक को झूठ बोलते हुए देखकर बच्चा भी झूठ बोलना सीख जाता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि मानव प्रकृति के मूल में परस्पर सहयोग एवं नैतिकता की भावना निहित होती है।

हमारे आचरण, व्यवहार, जीवन-शैली एवं नैतिक सिद्धांतों से संबंधित नियम ही 'धर्म' है। पंडित दीनदयाल उपाध्याय कहते हैं कि रिलीजन को ही बहुत लोगों ने धर्म मान लिया है।2 लेकिन वास्तव में धर्म की अवधारणा पाश्चात्य देशों के रिलिजन की अवधारणा से भिन्न है। धर्म मानव जीवन में मैत्री शांति एवं उत्कृष्टता लाता है। धर्म मानव की स्वाभाविक प्रवृत्ति पर नियंत्रण में सहायता करती है। धर्म भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग है।

मानव जीवन संपूर्णता में एकात्म है। पाश्चात्य देशों में जब प्रजातंत्र सुदृढ़ हुआ तब वहां एक धारणा उत्पन्न हुई जिसमें कहा गया कि मनुष्य एक सामाजिक एवं राजनीतिक पशु है। इस तरह के विचार एवं अवधारणा हमारे भारतीय संस्कृति के अनुकूल नहीं है। पाश्चात्य संस्कृति में शरीर पर अधिक बल दिया गया है, जबकि भारतीय संस्कृति में अद्वितीय आत्मा पर भी गहन विचार-विमर्श किया गया है। पश्चिमी देशों में व्यक्ति

बनाम समाज को लेकर काफी विवाद है। पंडित दीनदयाल उपाध्याय कहते हैं कि जैसे व्यक्ति की अपनी आत्मा होती है वैसे समाज की भी अपनी शक्ति, बुद्धि एवं भावनाएं होती है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के द्वितीय सरसंघचालक माधवराव सदाशिवराव गोलवलकर कहते हैं कि भारतीय संस्कृति में भी अच्छे एवं ख़राब दोनों तरह के लोग होते हैं, लेकिन हिंदू जब समाज के साथ मिलकर कार्य करते हैं, तो हमेशा अच्छा ही सोचते हैं। यह भारतीय संस्कृति एवं हिंदुत्व की विशिष्टता है। विनोबा भावे ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया था। कई बार लोग समूह अथवा झुंड की मानसिकता को ही समाज की मानसिकता समझने कि गलती कर बैठते हैं। झुण्ड की मानसिकता में मस्तिष्क पूरी तरह जागृत नहीं रहता है। जब व्यक्तियों का एक समूह कुछ समय के लिए तात्कालिक लक्ष्य के लिए एकत्रित होता है तो ऐसे समूह को झुंड की मानसिकता वाला समूह कहते हैं। परंतु समाज के मानसिकता एक दीर्घकालीन परंपरा, परस्पर सहयोग एवं विमर्श का परिणाम है।

इस राष्ट्रजीवन के उस स्वरूप का ध्यान हमें रखना होगा, जिसमें व्यक्तिवादी अभिनिवेशों को कोई स्थान नहीं है। संगठित समाज होने के लिए कुछ बातों की आवश्यकता होती है। विभाजित अंतःकरण से संगठन नहीं हो सकता। इसलिए पूरे समाज का एक ही श्रद्धा केंद्र होना चाहिए। श्रद्धा केंद्र अनेक रहने से समाज विभाजित रहेगा। यह जन्मदात्री भूमि जिस पर हमारा पालन-पोषण हुआ है, हम सब लोगों के लिए एक श्रद्धा केंद्र के रूप में विद्यमान है। इसके प्रति कृतज्ञता की भावना अर्थात उत्कट भक्ति सब के अंतःकरण में समान रूप से रहने पर संगठन के कार्य में सब प्रकार की सुगमता प्राप्त हो जाती है।

जब जनसमूह एक लक्ष्य और एक आदर्श के सामने नतमस्तक हो जाता है एवं एक विशेष भू-विभाग को मातृभूमि मानने लगता है, तो इसे राष्ट्र की संज्ञा दे सकते हैं। जैसे व्यक्ति में आत्मा निहित होती है, ठीक उसी तरह राष्ट्र की भी अपनी एक आत्मा होती है। पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने इसे 'चिति' नाम दिया है। किसी भी कार्य के गुण दोषों का निर्धारण करने का मानक 'चिति शक्ति' है। प्रकृति से लेकर संस्कृति तक में चिति का सर्वव्यापक प्रभाव है। उत्थान, प्रगति और धर्म का मार्ग चिति है। चिति ही किसी भी राष्ट्र की आत्मा है, जिसके संबल पर ही राष्ट्र का निर्माण संभव है। चिति ही राष्ट्रत्व का द्योतक है।3 राष्ट्र का हर नागरिक चिति के दायरे में आता है। सभी राष्ट्रीय हित से जुड़ी संस्थाएं भी इसी चिति के दायरे में आती है। चिति में व्यक्ति और राष्ट्र दोनों का ही समावेश है। जैसे राष्ट्र का आधार चिति होती है, वैसे ही जिस शक्ति से राष्ट् की धारणा होती है, उसे 'विराट' कहते हैं।4

Poonam Shodh Rachna

डार्विन के विकासवाद के अनुसार मानव ने अपने अंगों का विकास अपनी आवश्यकता तथा परिस्थितियों के अनुसार किया है। जबकि भारतीय संस्कृति के अनुसार आत्मा प्राण-शक्ति को संचालित करती है। जिस प्रकार आत्मा शरीर के विभिन्न अंगों के संचालन के लिए प्राण शक्ति के माध्यम से उत्तरदायी है, ठीक उसी प्रकार से राष्ट्र के संचालन के लिए कई संस्थाएं अथवा संगठन राष्ट्रीय लक्ष्य के लिए संचालित होते हैं। एक देश की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विभिन्न संस्थाएं अस्तित्व में आती हैं, प्रॉपर्टी, विवाह, गुरुकुल ये सभी संस्था के अंतर्गत आते हैं। इसी तरह राज्य भी एक संस्था है। समाज के हित एवं विकास के लिए शिक्षा एवं चिकित्सा नि:शुल्क और सर्वसुलभ होना चाहिए। प्राचीन काल में गुरुकुलों में शिक्षा नि:शुल्क थी। कोई भी घर विद्यार्थियों को भिक्षा देने से इनकार नहीं करता था। इसका तात्पर्य है कि शिक्षा एक सामाजिक उत्तरदायित्व है। पाश्चात्य देशों में राज्य और राष्ट्र में काफी भ्रम पैदा किया गया है। पश्चिम में राज्य को राष्ट्र के अनुरूप माना जाता है। लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं है। राज्य सामाजिक संपर्क सिद्धांत के अवधारणा के अधीन अस्तित्व में आया। पहले कोई राजा नहीं होता था, महाभारत में कृतयुग का वर्णन है, जहां न तो कोई राजा था, न ही राज्य। समाज धर्म के आधार पर चलता था। पंडित दीनदयाल उपाध्याय के अनुसार वर्ग संघर्ष सिद्धांत एवं समाज व व्यक्ति में परस्पर संघर्ष की धारणा एक मौलिक भूल है। जिस प्रकार शरीर के विभिन्न अंगों में संघर्ष की कल्पना नहीं की जा सकती, बल्कि इनमें एक ताल-मेल होता है, ठीक उसी प्रकार सामाजिक व्यवस्था में भी एक ताल-मेल में होता है।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय कहते हैं कि परिस्थितियों को आकार एवं दिशा देने में राष्ट्र-प्रमुख की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। महाभारत के

भीष्म पर्व में यह कहा गया है कि राष्ट्रीय विकास और समृद्धि में राजा की अहम् भूमिका होती है। राजा धर्म का रक्षक होता है, यद्यपि वह धर्म से परे नहीं है। वर्तमान युग में राजा की अहमियत आज के कार्यकारिणी की तरह ही है।

वर्तमान में अर्थव्यवस्था का उद्देश्य लोगों की आवश्यकताओं और मांग को संतुष्ट न कर, नई मांग का सृजन करना है। आधुनिक अर्थशास्त्र प्राकृतिक संसाधनों का दोहन कर प्रकृति के संतुलन को अव्यवस्थित कर रही है। हमारा उद्देश्य प्रकृति के साथ जीना होना चाहिए, न कि उसके दोहन में लीन होकर उसका विनाश करना। हमारी अर्थव्यवस्था को प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकता को पूर्ण करने में सक्षम होना चाहिए। यदि कोई सरकार इन न्यूनतम आवश्यकताओं को पूर्ण करती है, तो उसे हम धर्म का राज कहेंगे, अन्यथा उसे अधर्म का राज्य कहा जाएगा। हमारी आर्थिक प्रणाली का यह उद्देश्य होना चाहिए कि हर हाथ को काम कि वह गारंटी दे। पंडित दीनदयाल उपाध्याय श्रम और पूंजी दोनों के महत्व को स्वीकार करते हैं। श्रम और पूंजी का एक दूसरे से वही रिश्ता है, जो कि मानव और प्रकृति का है।

दीर्घकाल तक ब्रिटिश शासन के अधीन रहने के कारण हमारे देश में पाश्चात्य संस्कृति एवं उनकी स्थापना को एक मानक के रूप में स्वीकार करने की मनोवृत्ति विकसित हो गई है। जबकि स्वयं हमारे देश का एक समृद्ध एवं गौरवशाली अतीत रहा है। आज भारत का प्रत्येक व्यक्ति अपने उस गौरवशाली अतीत की पुनर्स्थापना के लिए दृढ़ संकल्पित है। लेकिन इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए आवश्यक है कि हमें पाश्चात्य संस्कृति को मानक मानने की प्रवृत्ति को समाप्त कर पूर्णतः भारतीयता पर आधारित नीतियों एवं विचारधाराओं पर अपना ध्यान केंद्रित करना चाहिए। भारत का निर्माण पूर्णत: भारतीयता के आधार पर ही होगा।5 इस संदर्भ में भारत को पुनः विश्व गुरु के रूप में स्थापित करने हेतू पंडित दीनदयाल उपाध्याय की स्थापना एकात्मक मानववाद सर्वाधिक महत्वपूर्ण पथ प्रदर्शक अवधारणा है।

सन्दर्भ:

1. दीनदयाल उपाध्याय, सम्पूर्ण वांग्मय, खंड एक; प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2016, पृ. 272
2. एकात्म मानववाद, दीनदयाल उपाध्याय; प्रकाशक: भारतीय जनता पार्टी, नई दिल्ली; 2012; पृ. 41-42
3. दीनदयाल उपाध्याय, सम्पूर्ण वांग्मय, खंड एक; प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2016; पृ. 118
4. एकात्म मानववाद, दीनदयाल उपाध्याय; प्रकाशक: भारतीय जनता पार्टी, नई दिल्ली; 2012; पृ. 67
5. दीनदयाल उपाध्याय, सम्पूर्ण वांग्मय, खंड एक; प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2016, पृ. 9